International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 28-33

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 28-33
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 25-12-2014
Accepted: 07-02-2015

**विकास शर्मा**
शोधार्थी; पीएच.ड़ी.
दिल्ली विश्वविद्यालय

**Correspondence**
**विकास शर्मा**
शोधार्थी; पीएच.ड़ी.
दिल्ली विश्वविद्यालय

# वैदिक दार्शनिक परम्परा में वाग्दर्शन
## (भर्तृहरि दर्शन के सन्दर्भ में)

**विकास शर्मा**

लौकिक वस्तुओं के साक्षात्कार के लिए जिस तरह नेत्र की उपयोगिता है उसी प्रकार अलौकिक तत्वों के रहस्यों को जानने के लिए वेद की उपादेयता है। वेद का वेदत्व इसी में है कि वह प्रत्यक्ष तथा अनुमान के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय पदार्थों का ज्ञान स्वयं कराता है। [1] वेदों को भारोपीय परिवार का सर्वप्रथम लिखित प्रमाण माना गया है। [2] सायण ने अपने ऋग्भाष्य के मंगलाचरण में वेदों को भगवान का श्वास कहा है। [3] वेदों का अधिक महत्व धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों के उद्गम की दृष्टि से है साथ ही भाषाशास्त्र, साहित्य, देवशास्त्र की दृष्टि से वेदों का महत्व स्वीकार किया गया है।

### वैदिक दार्शनिक परम्परा–

दर्शन शब्द का अर्थ है– जिसके द्वारा देखा जाए – 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्।' क्या देखा जाये? जगत् में विद्यमान समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म पदार्थों को। यहां पुनः प्रश्न उठता है कि क्या ये पदार्थ नेत्रों से दिखाई नहीं देते जिससे इनके दर्शन के लिए दर्शनशास्त्र की आवश्यकता पड़ी? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि ये दिखाई तो देते हैं किन्तु स्थूल नेत्रों द्वारा केवल इनके स्थूल एवं बाह्यरूप का ही दर्शन होता है।

सृष्टि में दृष्टिगोचर समस्त पदार्थों का वास्तविक तात्विक स्वरूप क्या है, इनके गुणधर्म क्या हैं और इनकी उत्पत्ति का कारण तथा उसकी प्रक्रिया क्या है, ये सब बातें स्थूल चक्षुओं से नहीं विचार एवं ज्ञान के चक्षुओं से ही देखी व जानी जा सकती है। सम्भवतः इसीलिए संस्कृत के शब्दकोशों में दर्शन शब्द का अर्थ देखने के साथ–साथ 'जानना या समझना' भी किया गया है। [4] हलायुध कोश के अनुसार, जिसके द्वारा यथार्थ तत्त्व का दर्शन किया जाए उसे दर्शन कहते हैं– ''दृश्यते यथार्थ तत्त्वमननेति। [5]

जड़ पदार्थों में गति एवं प्रेरणा उत्पन्न करने वाली सत्ता का दर्शन भी आन्तरिक दिव्य चक्षुओं के द्वारा किया जा सकता है। इस भांति संक्षेप में दर्शन वह साधन है जिसके द्वारा स्थूल, सूक्ष्म, भौतिक, आध्यत्मिक अथवा जड़ चेतन जगत् के सत्यभूत तात्विक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया जाए। [6]

वेदों में किसी एक विषय को आधार बनाकर वर्णन नहीं किया गया है अपितु विभिन्न दार्शनिक परम्पराएं हमें देखने को मिलती हैं जो इस प्रकार हैं–

- सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्धित चिंतन
- दिव्य शक्ति का चिंतन
- आत्मतत्त्व संबंधित चिंतन
- परलोक, कर्म एवं पुनर्जन्म सम्बन्धित चिंतन
- मोक्ष चिंतन
- ऋत एवं सत्य आदि नैतिक मूल्यों पर चिंतन

### वैदिक दार्शनिक परम्परा में वाग्दर्शन–

भाषा दर्शन की गरिमामय परम्परा वस्तुतः वैदिक वाङ्मय से ही प्रारम्भ होती है। चिंतन के दूसरे क्षेत्रों की भांति भाषा संबंधी चिंतन का मूल यहीं दिखाई देता है। वैदिक ग्रन्थों में भाषायी चिंतन विविध सन्दर्भों में और विविध प्रकार से हुआ है। वाग्दर्शन भी भाषा चिंतन परम्परा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

अब हमें यह देखना है कि वेद में वाग्दर्शन के जो तत्त्व हमें दिखलाई पड़ते हैं वो कि तरह एक स्वतन्त्र दर्शन का रूप ले लेते हैं। वाग्दर्शन का वर्णन इस प्रकार हैं–

## वेदों में वाग्दर्शन –

विश्व में सर्वप्रथम भाषा पर चिंतन ऋग्वेद के ऋषियों द्वारा ही किया गया है। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में यह चिंतन विस्तृत, सूक्ष्म और दार्शनिक होता गया। दर्शनीय है ऋग्वेद संहिता में 'भाषा' शब्द के प्रयोग का अभाव है वहां भाषा के लिए सबसे अधिक वाक् शब्द का प्रयोग किया गया है। [7] 'वाक्' शब्द कथनार्थक √वच् धातु से निष्पन्न हुआ है, अर्थात् जो बोली जाती है वह भाषा वाक् है। [8] वाक् शब्द के लिए वाणी, धेनु, गो, अक्षरा, सुनृता इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

भाषा का संस्कार सम्पन्न स्वरूप 'वाक्' कहलाता था क्योंकि मन्त्र में कहा गया है कि इन्द्र ने अपनी वाणी की सिद्धि द्वारा विकृत बोलने वाले और अस्पष्ट बोलने वाले हजारों लोगों का संहार किया था। [9] अतः ऋग्वैदिक ऋषि के अनुसार सुसंस्कृत वाणी 'वाक्', विकृत उच्चारण वाली वाणी 'विवाक्' और अस्पष्ट वाणी 'गृध्रवाक्' है। [10] वैदिक ऋषियों ने सूक्ष्म एवं दार्शनिक रूप से वाक् का वर्णन किया है। उनका कथन है कि अज्ञानी व्यक्ति वाक् तत्त्व को देखता हुआ भी नहीं देखता। सुनता हुआ भी नहीं सुनता। वह प्रतिभा का दर्शन करते हुए भी दर्शन नहीं करता है। उसकी अनुभूति करते हुए साक्षात् अनुभूति नहीं करता है। इसके सर्वथा विपरीत ज्ञानी व्यक्ति प्रतिक्षण प्रतिभा का साक्षात्कार करता है उसकी अनुभूति करता है। प्रतिभा पतिव्रता स्त्री के तुल्य उस आत्म–तत्त्वज्ञ व्यक्ति को अपना स्वरूप प्रकट करती है। [11]

निरूक्त के अनुसार बोलचाल के लिए प्रयुक्त भाषा को 'भाषा' नाम से पुकारा जाता है। [12] भाषा के स्वरूप विवेचन के लिए प्रायः एक ऋग्वेदीय मंत्र [13] को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। निरूक्त (13/16) की व्याख्या के अनुसार इसमें यज्ञपुरूषरूप महादेव का चित्रण है, परन्तु भर्तृहरि के वाक्यपदीय (1/132) की व्याख्या के अनुसार इसमें वाक्तत्त्व के स्वरूप को प्रकाशित किया गया है। वेदकालीन ऋषियों के समक्ष भाषा अवयवों का रूप स्पष्ट हो चुका था तथा उसमें इसके विश्लेषण एवं सूक्ष्म अध्ययन की प्रवृत्ति आ चुकी थी। इस काल की व्यवहृत भाषा में ऋषियों के द्वारा मन्त्रों की रचना के लिए प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को मानक मानकर उसका विश्लेषण भी किया जाता था। ऋक् संहिता में मुख्यतः तीन सूक्त वाक् की महिमा से सीधे सम्बद्ध है– 1/164, 10/71, 10/125

आक्सफोर्ड विष्वविद्यालय में भाषाविज्ञान के महोपाध्याय प्रो0 सईस ने 'साइन्स ऑफ लैंग्वेज' भाग–1, पृष्ठ–1 पर ऋग्वेद के एक सूक्त की और भाषा विशेषज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया है। सईस का कथन है कि इन मंत्रों में वैदिक ऋषि का वाक् तत्त्व के विषय में जो वक्तव्य है वह बहुत ही गम्भीर, विचार पूर्ण, भाषाविज्ञान की दृष्टि से सत्य तथा बहुत ही दूरदर्शितापूर्ण है। ऋग्वेद मंडल–10, सूक्त 125 मंत्र एक से आठ जिसका सईस ने उल्लेख किया है, वाक्तत्व का आत्मविवेचन है। इसका ऋषि 'वाक्–आम्भृणी' है और देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय 'वाक्तत्त्व' है। वाक्तत्त्व ने अपने स्वरूप को उत्तमपुरूष में आत्मविवेचन के रूप में प्रस्तुत किया है। [14] इस सूक्त के अनुसार वाक्तत्त्व समस्त तत्त्वों का धारक है, [15] सोमतत्त्व आदि का पोषक है, [16] वाक्तत्त्व ही राष्ट्रनिर्मात्री शक्ति है, [17] वाक्तत्त्व पर जो विश्वास नहीं करते वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं। [18] वाक्तत्त्व मनुष्य को ब्रह्मतत्त्व व ऋषितत्त्व को प्राप्त करने योग्य बना देता है, [19] वाक्तत्त्व ही सर्वव्यापक है, [20] वाक्तत्त्व से ही विश्व का उद्भव हुआ है, [21] वाक्तत्त्व से ही विश्व सृष्टि की उत्पत्ति एवं विकास हुआ है। [22]

ऋग्वेद के ऋषियों ने बह्मतत्व और वाक्तत्त्व में समानता दर्शायी है उनका कथन है कि जहाँ तक ब्रह्मतत्त्व व्याप्त है, वहाँ तक यह वाक्तत्त्व व्याप्त है। [23] यही वाक्तत्त्व कामधेनु के समान है जो सभी इच्छाओं की पूर्ति करती है। [24] वाक्तत्त्व सहस्त्र धाराओं में अर्थात् सहस्त्र भाषाओं और उपभाषाओं में सर्वत्र व्यापक है, प्रचलित है। उसमें मौलिक रूप से पवित्रता है, अतएव उसमें जो असंस्कृत अंश आ जाता है उसको प्रतिभा सम्पन्न कवि अर्थात् क्रान्तदर्शी विद्वान, वैयाकरण कवि आदि दूर करके भाषाशास्त्र को संस्कृत एवं पवित्र बनाये रखते हैं। [25] ऋग्वेद में आगे वाक्तत्त्व को हरि अर्थात् विष्णु बताते हुए कहा गया है कि वह सहस्त्र धाराओं वाला है और उन सहस्त्र धाराओं से वह सिक्त होता रहता है अर्थात् समृद्ध किया जाता है। वही वाक्तत्त्व को पवित्र करता है।

सोमतत्त्व की व्याख्या करते हुए ऋग्वैदिक ऋषियों ने कहा है कि वह वाक्तत्त्व को कवियों की बुद्धि से प्रेरित करता है और समृद्ध करता है। [26] वाक्तत्त्व से वाक्तत्त्व के उद्धार के विषय में आंगिरस कृष्ण ऋषि ने इन्द्र देवता के एक मंत्र में कहा है कि हे विद्वज्जनो! वाक्तत्त्व से वाक्तत्त्व को पार करो। अर्थात् वाक्तत्त्व से उस ब्रह्मतत्त्व को प्राप्त करो। [27] यही भाव गीता में कृष्ण ने कहा है कि आत्मशक्ति के आश्रय से अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहिए।[28] ऋग्वेद में प्राजापत्य पंतग ऋषि ने मायाभेद की व्याख्या में कहा है कि पतंग अर्थात् सूर्य मनस्तत्त्व के द्वारा वाक् को सम्पुष्ट करता है। [29]

## वेदों में वाग्दर्शन का स्वरूप

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वैदिक ऋषियों में वाक् विषयक सामान्य चेतना पर्याप्त रूप में थी। यही चेतना वाग्दर्शन के रूप में विकसित हो रही थी, इसे निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

### वाक् का देवीरूप–

वैदिक ऋषि वाक् के देवी देन के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार वाणी देवताओं की सृष्टि है, जिसे स्रष्टा ने सृष्टि में सर्वत्र फैला रखा है। [30] एक वर्णन में कुत्स अंगिरस को कहते हैं कि इन्द्र ने सबसे पहले स्तोता को वाणी प्रदान की। [31] सद्यि वैरूप के अनुसार वाणी को शरीर में ईश्वर ने स्थापित किया है। [32] नेम भार्गव ऋषि कहते हैं कि देवताओं ने चेतनावान् और इन्द्रिय सम्पन्न सभी प्रकार के दु–पाये, चौपाये, तिर्यक, और सरीसृप पशुओं [33] को वाक् प्रदान किया। [34]

मननशील होने के कारण मनुष्यों ने इसका लाभ सर्वाधिक उठाया। [35] इन वर्णनों से स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि भाषा के असामान्य स्वरूप से प्रभावित थे। वे भाषा को सामान्य मानवी शक्ति के रूप में न लेकर असामान्य दैवी शक्ति के रूप में लेते थे। यह विचारधारा ही कालान्तर में भाषा के तात्विक स्वरूप विषयक चिंतन में परिणत हुई। इस प्रकार वाग्दर्शन के विकास की दृष्टि से वाक् को देवी देन के रूप में समझना महत्वपूर्ण है।

### वाक् की नित्यता–

वैदिक ऋषि भाषा को देवी देन के रूप में तो मानते ही हैं वे वाक् की नित्यता में भी विश्वास करते हैं। आंगिरस ऋषि ने शब्द को स्पष्ट रूप से नित्य कहा है। [36] वाक् की नित्यता को प्रदर्शित करने के लिए वाक् (शब्द) के लिए 'अक्षरा' और 'अघ्न्या' जैसे शब्दों का प्रयोग वेदों में मिलता है। [37]

### वाक् का स्वरूप–

विश्वामित्र गाथिन का कथन है कि बुद्धिमान लोग वाणी को भली भांति मन में छानकर प्रयोग करते हैं। [38] इसका तात्पर्य यह है कि उच्चरित ध्वनि से पूर्व शब्द (वाक्) की मानसिक सत्ता मानते हैं। वाक् पहले मन में संकल्प के रूप में आती है, फिर शारीरिक प्रयत्नों के द्वारा ध्वनि के रूप में परिणित होकर बाह्य अभिव्यक्त होती है। वामदेव गौतम के अनुसार वाणी हृदय रूपी समुद्र से उद्भूत होती है, वह हृदय में रहती हुई मन से छन कर

बाहर आती है। [39] एक वर्णन के अनुसार वाक् हृदय (गर्भ) में स्थित है। शब्द उसका बछड़ा है जो मुख में स्थित होता है। गर्भस्थ वाक् का कारण मन तथा मुखस्थ वाक् का कारण जिह्वा बताया गया है। [40]

शशकर्णकाण्व के अनुसार वाक् मति को खोलती है। [41] गौतम राहूगण के अनुसार वाक् का सम्बन्ध मन से है। [42] उसके अनुसार मनन या विचार के बिना वाक् की उत्पत्ति संभव नहीं हो सकती। पतंग प्राजापत्य ऋषि के अनुसार वाक् को पतंग (आत्मा) मन में धारण करता है। [43] मन का संकल्प ही उच्चारण के द्वारा द्योतित होता है और कवि लोग अभिव्यक्ति के द्वारा उसकी रक्षा करते हैं। ऋग्वेद के दशम् मण्डल में आठ ऋचाएँ ऐसी हैं जिनमें वाक् को ऋषि माना गया है। जो स्वयं अपने स्वरूप का परिचय देता है। इसके अनुसार वाक् तत्त्व ही एकादश रूद्रों, आठ वसुओं, द्वादश आदित्यों तथा विश्वदेवों के साथ विचरण करता है। वह मित्र तथा वरूण दोनों को ही धारण करता है, दोनों कानों के बन्द करने पर आन्तरिक ध्वनिरूप शब्दों की धारा चलती रहती है जिस पर शरीर की गतिविधि निर्भर रहती है। इसके समाप्त होते ही शरीर की समाप्ति हो जाती है। [44] यजुर्वेद में वाक्तत्त्व के विभिन्न गुणों पर प्रकाश डाला गया है। यजुर्वेद का कथन है कि वाक्तत्त्व समुद्र है अर्थात् समुद्रवत् अक्षय भंडार, अगाध, और दुर्बोध है। वह सर्वव्यापक है अनादि और अक्षर है। [45] वाक्तत्त्व चेतनतत्व है, यज्ञिय है, अविनाशी और दोनों सिर वाला है अर्थात् स्फोट और ध्वनि से युक्त है। [46] वाक्तत्त्व विश्वकर्मा ऋषि है। [47]

## वाक् का पररूपता –

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि वैदिक ऋषि उच्चरित ध्वनि से पूर्व सूक्ष्म (शब्द) वाक् की सत्ता में विश्वास करते थे। अनेक ऐसे वर्णन भी मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि वैदिक ऋषि वाक् की पररूपता में भी विश्वास करते थे। ऋग्वेद के एक सूक्त में बृहस्पति को वाक् का रक्षक बताया गया है। देवराज इन्द्र की सारी गायें पणि नामक राक्षस हांक ले गया था। इन्द्र ने बृहस्पति से गायों को खोजने का अनुरोध किया। बृहस्पति ने गायों को खोजकर राक्षस से मुक्त कराया। राक्षस द्वारा जहां गायें रखी गई थी उस स्थान को अज्ञान की गुफा (गुहा तिष्ठन्तीर अनृतस्यं सेतौ) कहा गया है। इसे प्रतीकात्मक प्रयोग कहा जाता है। इसके अनुसार गायें वाणी (वाक्) है, जिसे लोग सम्प्रेषण में प्रयोग करते हैं। तब वे अज्ञान में रहती है जब तक हमारी आत्मा उनकी खोज नहीं करती। जब वाक् के गुणों का बोध हो जाता है तो समस्त विश्व वाणी से भर जाता है। लोगों के मन में व्याप्त अज्ञान दूर हो जाता है, अनुभव जगत् इसके रहस्यों को खोलता है। [48] दीर्घतमस् का कथन है कि वाक् समस्त पदार्थों को जानती है। उसके द्वारा जगत् की समस्त वस्तुओं का वर्णन हो सकता है किन्तु वाणी की इयत्ता को कोई नहीं जानता। [49]

एक वैदिक ऋषि बृहस्पति की प्रार्थना में कहता है कि लोगों के मन में उच्चारण से पूर्व ही वस्तुओं के नाम रहते हैं। उच्चतम एवं शुद्धवाणी अज्ञान की गुफा में छिपी है, जिसे श्रेष्ठ द्वारा ही जाना जा सकता है। [50] सध्रि ऋषि का कथन है कि वाणी का विषय उतना ही व्यापक है, जितना व्यापक ब्रह्मतत्त्व का है।[51] वामदेव गौतम के अनुसार मनुष्यों को वाणी ईश्वर से शक्ति के रूप में प्राप्त हुई है जिसका मनुष्य परिष्कार करते हैं। [52] देव तथा मनुष्य सभी लोग वाक् की उपासना करते हैं, जिस पर वाक् का अनुग्रह हो जाता है, वह तेजस्वी बन जाता है। [53] वाक्तत्त्व रूद्र को शक्ति सम्पन्न बनाता है। आकाश तथा पृथ्वी सर्वत्र वह व्याप्त रहता है। सम्पूर्ण मानव समाज को वाक् आनन्दित भी करता है। [54] ऋग्वेद में एक स्थल पर कहा गया है कि वाक् द्युलोक एवं पृथ्वी से परे है वह निर्विकार निर्लेप निरन्जन एवं एक रूप है। [55]

अथर्ववेद के अनुसार वाक्तत्त्व ऋतु में स्थित, सत्य के द्वारा आवृत्त तथा श्री से ढँका हुआ है। यश से घिरा हुआ स्वधीरूप परिधान से अलंकृत, श्रद्धा से ढोया हुआ तथा दीक्षा से सुरक्षित है। [56] इस कथन से भी वाक्तत्त्व की सूक्ष्मरूपता में भी पररूपता निरूपित है।

## वाक् अभिव्यक्ति के स्तर –

वाक् अभिव्यक्ति के स्तर के विषय में वैदिक ऋषियों का संकेत परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी की ओर है। पतंजलि ने महाभाष्य में एक ऋक् उद्धृत किया है, जिसके अनुसार वाणी के चार स्तर परा आदि पाये जाते हैं। वाणी के चार स्तर है जिनका ज्ञान केवल विद्वान ब्राह्मणों को है। सामान्य जन भाषा के तीन स्तरों को नहीं जानते। वे केवल चतुर्थ वाणी ही बोलते हैं। [57] अथर्ववेद के एक वर्णन में वाक्तत्त्व को तीन पाद वाला कहा गया है। वहां वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती वाक् के तीन पाद हैं। [58]

## वाक् अभिव्यक्ति की प्रक्रिया–

वेदों में वाक् की बाह्य अभिव्यक्ति की प्रक्रिया के विषय में पर्याप्त विचार किया गया है। वैदिक ऋषि यह तो मानते हैं कि ध्वनि रूप में उच्चरित होने से पूर्व वाक् मन में रहता है यह ध्वनि रूप में किस प्रकार परिणित होता है इस विषय में भी यत्र तत्र विचार प्रकट किया गया है। देवपि आर्ष्टिषेण ने वाक् का अधिष्ठान ''आस्य'' बताया है। [59] इसकी व्याख्या करते हुए पतंजलि ने कहा है कि वक्ता 'आस्थ' से वर्णों का प्रक्षेपण करता है। इसलिए यह आस्थ कहा जाता है। [60] पतंजलि के अनुसार उच्चारण में विशेष उपयोगी होने से मुख गहवर की ही नाम आस्य पड़ा। ऋग्वेद संहिता में 'आस्थ' का प्रयोग अनेक बार हुआ है। इनमें से छः बार इसका प्रयोग बोलने के अर्थ में हुआ है। [61] एक वर्णन के अनुसार वाक् हृदय गर्भ में स्थित रहता है। शब्द उसका बछड़ा है जो मुख में स्थित रहता है। गर्भस्थ वाक् का कारण मन है तथा मुखस्थ वाक् का कारण जिह्वा है। [62]

इससे स्पष्ट है कि वाक् पहले मन में आती है तथा बाद में शब्द के रूप में जिह्वा द्वारा बाहर अभिव्यक्त हो जाती है। अगस्त मैत्रावरूणि के अनुसार बाह्य अभिव्यक्ति के बाद द्यावा–पृथिवी के मध्य आकाश में फैल जाती है। [63]

## वाक् से जगत् की उत्पत्ति–

वाक् से जगत् की उत्पत्ति के विषय में व्याख्या कहीं कहीं ही की गई है। एक वर्णन के अनुसार वाक् ही समुद्र के अन्तर्गत निवास करता है। वहीं समस्त जगत् की उत्पत्ति करता है। वह द्यु–लोक को अपने शरीर से स्पर्श करता है। इस का अर्थ यह हुआ कि समस्त जगत् की सृष्टि करता हुआ वाक्तत्त्व उसी में ओतप्रोत है। [64]

वाक्तत्त्व ही गतिशील है, समस्त विश्व का जनक है। वह द्युलोक एवं पृथ्वी से परे है।[65] अथर्ववेद में वाक्तत्त्व की विद्युत के रूप में द्युलोक एवं पृथ्वी में शक्ति का संचार करता है। उसी से समस्त प्राणियों में जीवन शक्ति की प्राप्ति होती है। उसी बल एवं अन्न का पोषण होता है। [66] अथर्ववेद में वाक्तत्त्व को परमेष्ठी प्रजापति के स्वरूप में प्रतिष्ठित किया गया है। उसी से शान्त अथवा घोर समस्त जगत् की उत्पत्ति होती है। [67] प्रजापतिरूप में इस तत्त्व की सर्वत्र व्यापकता है। यह वाक्तत्त्व विश्वरूप, शर्वरूप तथा गोरूप है। [68] ऋग्वेद में कहा गया है कि जहां तक ब्रह्म प्रतिष्ठित है वहां तक वाक् भी प्रतिष्ठित है। इस कथन से भी वाक्तत्त्व की जगत् में व्यापकता प्रतिष्ठित होती है। [69]

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 231 में कृष्ण द्वैपायन व्यास (विक्रम से 3000 वर्ष पूर्व) ने निम्नलिखित श्लोक कहा है–

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।

अर्थात् आदि और निधन रहित नित्य वाक् स्वयंभू ब्रह्मा प्रजापति ने उत्सृष्ट की, आदि में वेदमयी दिव्यवाक् थी। उस वाक् से संसार की सब प्रवृत्तियां हुई।

इस श्लोक को देखकर सहसा भर्तृहरि के वाक्यपदीय की प्रथम कारिका का स्मरण होता है जहां उन्होंने वाक् के स्थान पर शब्द का प्रयोग किया है।–

अनादि निधन ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।। [70]

**भर्तृहरि के अनुसार वाक्(शब्द) से सृष्टि निर्माण–**

भर्तृहरि का कथन है कि शास्त्रज्ञों का मत है कि यह संसार शब्द का ही परिणाम स्वरूप है। सृष्टि के आदि में संसार में यह विश्व छन्दोमयी वाक् से ही विवर्त को प्राप्त हुआ। [71] इस संसार में जो कुछ चल–अचल विद्यमान है, वह सब वाक् का ही परिणाम है। भर्तृहरि ने स्वोपज्ञ वृत्ति में कहा है कि –

'वागेव विश्वाभुवनानि जज्ञेवाच इत्सर्वममृतं यच्च मर्त्यम्।' [72]
भर्तृहरि कहते हैं कि संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्द के बिना हो। समस्त ज्ञान शब्द के साथ संसृष्ट सा प्रतीत होता है। [73]

भर्तृहरि का मानना है कि यह वाक् ही समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करती है। ज्ञान में प्रकाशशीलता अर्थात् बोधकशक्ति तभी तक है, जब तक कि उसमें वाक्शक्ति विद्यमान है। यदि ज्ञान में नित्यरूपं से रहने वाली वाक् शक्ति निकल जाये तो ज्ञान किसी भी वस्तु का बोध नहीं करा सकता उस अवस्था में ज्ञान की स्थिति ऐसी ही होगी जैसे चैतन्यहीन आत्मा की क्योकि वाक्शक्ति ही प्रकाशों की भी प्रकाशिका है। [74]
आचार्य दण्डी ने भी शब्द की उस प्रकाशशीलता को दृष्टि में रखते हुए कहा है कि यदि शब्द रूपी ज्योति इस संसार में न प्रदीप्त रहे तो तीनों लोकों में अन्धकार ही अन्धकार होगा। [75]

**सृष्टि का विकास–**

भर्तृहरि शब्द की तीन अवस्थाओं को मानते हैं पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। नागेश ने जिसको ''परा'' नाम दिया है उसको भर्तृहरि तृतीय अवस्था पश्यन्ती मानते हैं। उसी से संसार की सृष्टि होती है। [76]

भर्तृहरि के अनुसार सृष्टि का विकास शब्दब्रह्म से होता है तथा उसी में वह सृष्टि लीन होती है। [77]

**शब्दशक्ति का स्वरूप–**

भर्तृहरि ने शब्दशक्ति की व्यापकता का बहुत ही संदर वर्णन किया है। शब्दशक्ति का व्यावहारिक जीवन में क्या उपयोग है, इसका भी विशद विवेचन किया है। ऋग्वेद 10.114.8. ने कहा है कि ''यावद ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्'' अर्थात् जितना व्यापक ब्रह्म है उतनी ही वाग्देवी। भर्तृहरि वेदों और ब्राह्मणों में प्रतिपादित वाक्शक्ति या शब्दशक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं कि शब्दों में यह शक्ति है कि वह संसार को एक सूत्र में बांधे हुए है। शब्द ही नेत्र है अर्थात् समस्त वस्तुओं का ज्ञापक है। समस्त अर्थ प्रतिभारूप है। शब्द ही वाच्य और वाचक रूप से भिन्न प्रतीत होता है। [78]

**व्यवहार में शब्द की उपयोगिता–**

पुण्यराज ने इसकी व्याख्या में एक श्रुति का वचन उद्धृत किया है। श्रृति का कथन है कि वाक्शक्ति ही अर्थ को देखती है। अर्थात् वाक्तत्त्व जब बुद्धि रूप विवर्त को प्राप्त होता है तब अर्थ का ज्ञान करता है। वाक्शक्ति ही बोलती है अर्थात् समस्त व्यवहार की साधनभूत है। वाक्शक्ति ही शक्ति रूप से विद्यमान होकर अर्थ को विस्तृत करती है। समस्त संसार नाना रूपों को धारण करता हुआ उसी में निबद्ध है। उसी एक वाक्शक्ति का विभाजन करके समस्त संसार का व्यवहार चलता है। [79]

**शब्दमूलक समस्त ज्ञान–**

संसार में जितना कुछ भी लोक व्यवहार है, वह शब्द के ही अधीन है। यदि यह कहा जाये कि नवजात बालक को शब्द ज्ञान नहीं है, उसे किस प्रकार प्रतीति होगी। इसके विशय में भर्तृहरि कहते हैं कि बालक भी पूर्वजन्म के संस्कार के कारण शब्दों के द्वारा इतिकर्त्तव्यता को जानता है। [80] पशु–पक्षियों आदि में जो ज्ञान–शक्ति है, वह भावनामूलक ही है। पूर्वजन्म के संस्कार से ही वह प्रत्येक अर्थ का ज्ञान करते हैं। अतः किसी प्रकार के ज्ञान को प्रतिभा से पृथक नहीं कर सकते। [81]

भर्तृहरि का मानना है कि संसार का समस्त ज्ञान शब्दमूलक है। अतएव वे कहते हैं समस्त विद्याएं तथा समस्त शिल्पशास्त्र तथा समस्त कलाएं शब्दशक्ति से सम्बद्ध हैं। शब्द ही वह शक्ति है, जिसके द्वारा उत्पन्न हुई समस्त वस्तुओं का विवेचन और विभाजन किया जाता है। [82]

**शब्द और अर्थ की एकरूपता–**

भर्तृहरि कहते हैं कि शब्द और अर्थ एक ही आत्मा के दो स्वरूप हैं। दोनों की पृथक पृथक स्थिति नहीं है। इनमें कोई वास्तविक भेद नहीं है। जो बाह्य जगत् में भेद ज्ञात होता है वह तात्विक नहीं है। [83] कविकुलगुरू कालिदास ने इसी भाव को व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध श्लोक लिखा है कि शिव और पार्वती इसी प्रकार अभिन्न है जैसे शब्द और अर्थ। [84]

**शब्द की चैतन्यरूपता–**

शब्दशक्ति ही समस्त प्राणियों में चैतन्यरूप से विद्यमान है। बाह्य जगत् लोक व्यवहार का साधन है और अन्दर सुखदुःख आदि के ज्ञान के रूप में है। समस्त प्राणिमात्र में ऐसी कोई नहीं है, जिसमें वह शब्दशक्तिरूपी चैतन्य न हो। कोई यह मानते हैं कि चितिक्रिया वाक्शक्ति के बिना नहीं रहती। अन्य आचार्यों का मत है कि वाक्शक्ति ही चेतना है। [85] जो कुछ भी लौकिक व्यवहार है, वह वाक्शक्ति के द्वारा ही चल रहा है। वाक्शक्ति ही प्राणियों को प्रत्येक कार्य में प्रेरित करती है। यदि वाक्शक्ति न रहे तो समस्त संसार काष्ठ और भित्ति के तुल्य निश्चेतन ही दिखाई पडेगा। [86]

**वाक् के विषय में प्राचीन व आधुनिक मतः–**

यहां प्राचीन का अर्थ प्राचीन जातियों के संदर्भ में है। मिश्र और यूनान आदि के अति प्राचीन लोग देवों तथा विभूतियों में विश्वास करते थे। उनके विद्वानों ने देवी वाक् के स्वरूप के विषय में वर्णन किया है–

(क) मिश्र के प्राचीन विश्वास के विषय में मर्सर लिखता है–

Egyptians had their 'sacred writing'..... 'writings of the word of the gods' often kept in a "house of sacred writing." [87]

अर्थात् मिश्र के लोग अपने पवित्र लेख रखते थे। 'देवों के शब्दों का लेख' जिसे वे प्रायः 'पवित्र लेखों का घर' में रखते थे।

(ख) मिश्री विद्वान इस लेख के लिए ndw-ntr (न्दव–न्त्र [88]–the speech of gods) शब्द का प्रयोग करते थे। निसन्देह मिश्री भाषा के 'न्दव' पद में 'द्व' शब्द देव शब्द का संकेत करता है, और 'न्त्र' पद वाग्वाची वैदिक शब्द 'मन्द्रा' का बोध कराता है। अर्थात् मिश्री के लोग देवों की वाणी को देवमन्द्रा कहते थे।

(ग) यूनान का प्रसिद्ध प्राचीन लेखक होमर (ईसा से 800 वर्श पूर्व) 'देवों की भाषा और मानवी भाषा' का वर्णन अपने लेख में करता है–

The language of gods and of men. [89]

उसके पश्चात् भाषा पर परीक्षण का कार्य यूरोप में आरम्भ हुआ, इसे scientific age या विज्ञान का युग नाम दिया गया। गत दो सदियों में योरोप के कुछ लोगों ने विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आरम्भ किया। जब पाश्चात्य लोगों के पास संस्कृत पहुंची तो एक विद्वान ने कहा कि संस्कृत योरोपीय भाषाओं की जननी है। उससे संसार के पुरातन इतिहास पर अभूतपूर्व प्रकाश पड़ेगा। फ्राईड्रिश श्लेगल ने इन्हीं भावों का ओजस्वी शब्दों में उल्लेख किया है।

F.Schelegel ..... wrote that he expected nothing less from India than ample information on the

history of the primitive world, shroudedhitherto in utter darkness. [90]

अर्थात् कि वह भारत से महती आशा रखता है। भारत द्वारा, अब तक पूर्ण अन्धकार–आवृत्त संसार के पुरातन इतिहास का ज्ञान मिलेगा।

इस प्रकार वाक् के जो बीज हमें वेद में दिखलाई पड़ते है वो अब स्वतन्त्र दर्शन अर्थात् स्वतन्त्र विषय का रूप ले चुके हैं। निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि वाक् सभी चेतन व अचेतन तत्त्वों में विद्यमान है। आनन्द रूप होकर स्थित रहता है। [91] वैयाकरणों के इस सिद्धांत की पुष्टि आधुनिक विज्ञान ने भी की है। डॉ. ओस्कर ब्रनलर ने 25 वर्ष के अनवरत अध्यवसाय के अनन्तर वैज्ञानिक पद्धति से वैयाकरणों के स्फोट सिद्धांत की सम्पुष्टि की है। उनका कथन है कि पर्वतों वृक्षों और वनस्पतियों आदि के अन्दर स्फोट की सिद्धि ने मुझे इस निर्णय पर पहुंचाया है कि पृथ्वी पर प्रत्येक पदार्थ में स्फोट हो रहा है। यदि हम वैज्ञानिक ढंग से यह सिद्ध कर देते हैं और जैसा हम सिद्ध करते हैं कि पृथ्वी पर प्रत्येक पदार्थ में स्फोट है तो असन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि मानव में भी स्फोट है। प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में भी प्रतिक्षण स्फोट होता है। [92]

**पादटिप्पणी–**

1. सायण, ऋग्वेद भाष्योपक्रमणिका, पृ.–39.
2. डॉ. एस. एन. दासगुप्ताः ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी, वाल्यूम–9, पृ. 10.
3. 'यस्य निश्वसितं वेदाः'– सायण के ऋग्भाष्य का मंगलाचरण, ऋग्वेद में दार्शनिक तत्व; डॉ. गणेशदत्त शर्मा, अध्याय–1, पृ.सं. –3.
4. दर्शन शब्द पर वी.एस.आप्टे; संस्कृत–इंगलिश डिक्शनरी; मोनियर विलियमः संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी।
5. दर्शन शब्द पर हलायुध कोश।
6. ऋग्वेद में दार्शनिक तत्त्व, डॉ. गणेशदत्त शर्मा, विषयप्रवेश, पृ. सं.9.
7. ऋ.–1/40/6, 8/9/16, 9/95/5 इत्यादि।
8. निरूक्त–2/23.
9. ऋ.–10/23/4.
10. भारतीय अर्थविज्ञान, हरिसिंह सेंगर, दिल्ली, पृ0–166।
11. ऋ.–10/71/4.
12. निरूक्त–1/4.5; वैदिककोश, डॉ. सूर्यकान्त, पृ0–354.
13. ऋ.–4/58/3.
14. अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन; कपिलदेव द्विवेदी; वाराणसी, 2008, पृ. स. 20.
15. ऋ.–10/125/1.
16. ऋ.–10/125/2.
17. ऋ.–10/125/3.
18. ऋ.–10/125/4.
19. ऋ.–10/125/5.
20. ऋ.–10/125/6.
21. ऋ.–10/125/7.
22. ऋ.–10/125/8.
23. ऋ.–10/114/8.
24. ऋ.–8/100/11.
25. ऋ.–9/73/7.
26. ऋ.–9/97/32.
27. ऋ.–10/42/1.
28. गीता–6/5.
29. ऋ.–10/177/2.
30. ऋ.–10/125/3.
31. ऋ.–1/101/5.
32. ऋ.–10/114/9.
33. अथर्व. सं.–11/2/9.
34. अथर्व. सं.–11/2/9.
35. ऋ.–1/92/9.
36. ऋ.– 8/75/6.
37. ऋ.–1/164/27.
38. ऋ.–4/8/5.
39. ऋ.–4/98/5.
40. ऋ.–10/53/11.
41. ऋ.–8/9/16.
42. ऋ.–1/92/9.
43. ऋ.–10/177/2.
44. ऋ.–10/125/1.
45. यजु.–5/33.
46. यजु.–4/19.
47. यजु.–13/58.
48. ऋ.–10/15/67.
49. ऋ.–10/114/8.
50. ऋ.–10/6.71/1.
51. ऋ.–1/164/10.
52. ऋ.–1/92/9.
53. ऋ.–10/126/5.
54. ऋ.–10/125/6.
55. ऋ.–10/125/8.
56. अथर्ववेद– 12/5/3–2.
57. महाभाष्य 1/1/1. ऋ. 1/164/45.
58. अथर्व.– 9/10/19.
59. ऋ.–10/71/4.
60. म.भा.– 1/1/9 पृ0 –196.
61. ऋ.–1/166/11; 5/18/4; 10/53/11; 94/2–3.
62. ऋ.–10/53/11.
63. ऋ.–1/73/3.
64. ऋ.–10/125/7.
65. ऋ.– 1/125/8.
66. ऋ.–9/1/20.
67. अथर्व.–19/9/3.
68. अथर्व.–9/7/25.
69. ऋ.–10/114/8.
70. वाक्यपदीय–1/1.
71. वा.प.–1/120.
72. वा.प.–1/120 की टीका
73. वा.प.– 1/123.
74. वा.प.– 1/124.
75. काव्यादर्श–1/4.
76. वा.प.–1/143.
77. वा.प.–1/1.टीका
78. वा.प.–1/119.
79. वा.प.–1/119. टीका
80. वा.प.–1/121.

81. वा.प.–2 / 148.
82. वा.प.–1 / 125.
83. एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक् स्थितौ।। वा.प.–2 / 31.
शब्दार्थावभिन्नावेकस्यान्तरस्य तत्त्वस्य सम्बन्धिनौ वस्तुतः बहिः स्थितौ भेदाविव प्रतिभासेते। – पुण्यराज।
84. रघुवंश–1 / 1.
85. वा.प.–1 / 126.
86. वा.प.–1 / 127.
87. P.12, The Religion ofAncient Egypt, Mercer. S.A.B., 1949
88. P. 87, The story of Language, Maerio, Pai.
89. PP. 299-303, Asianic Elements in greek civilization, Ramsay.
90. P.X Appendix-I, A second selection of Hymns from the Rigveda, Zimmerman, 1939.
91. ऋ.–8 / 100 / 10.
92. अमृत बाजार पत्रिका, 26 जून 1949.